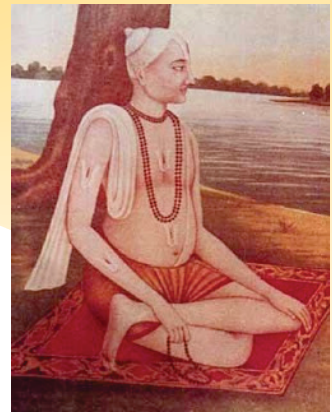


गोस्वामी तुलसीदास



एक बार कृष्णभक्त सूरदास से पूछा गया कि किसकी कविता श्रेष्ठ है। सूर ने कहा कि मेरी। फिर प्रश्नकर्ता ने पूछा कि तुलसी की कविता कैसी है? सूर का उत्तर था—तुलसी की कविता कहाँ है? वह तो मंत्र हैं, सिद्ध मंत्र।

वास्तव में तुलसीदास महाकवि और सिद्ध संत थे। वेद, पुराण आदि का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। उनका स्वभाव लोक कल्याणकारी था। उनमें महान् कवि के समस्त गुण विद्यमान थे।

तुलसी को मानवतावादी कवि भी माना जाता है। अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने मानवता के विकसित रूप को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इसीलिए डॉ. ग्रियर्सन ने उन्हें एशिया का सर्वोत्कृष्ट कवि कहा है।

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। वह सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनका परिवार सोरों (एटा, उत्तर प्रदेश) में रहता था। कुछ विद्वान् तुलसी का जन्म-स्थान राजापुर (बाँदा, उत्तर प्रदेश) भी मानते हैं।

जन्म-स्थान की ही तरह तुलसी के जन्मकाल के बारे में भी मतभेद हैं। फिर भी मोटे रूप में उनका जन्म विक्रम-संवत् 1554 (सन् 1497) में सावन के शुक्लपक्ष की सप्तमी को हुआ माना जाता है। कुछ लोग तुलसी का जन्म-समय संवत् 1580 (सन् 1523) भी मानते हैं। वैसे कुछ लोग और भी तिथियाँ बताते हैं।

खैर, कुछ भी हो, इतना जरूर माना जाता है कि आम बच्चों की तरह तुलसीदास जन्म

लेते ही रोए नहीं थे। उनके मुँह से 'राम' शब्द निकला था। इसीलिए लोग उन्हें 'रामबोला' कहने लगे थे।

यह भी कहा जाता है कि जन्म के समय तुलसीदास के मुँह में 32 दाँत मौजूद थे। उनका शरीर भी साधारण बच्चे से बड़ा था। इसीलिए घर के लोग उन्हें देखकर डर गए। उन्होंने इसे कोई अपशकुन माना।

ऐसे विचित्र बालक का जन्म सुनकर पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। ज्योतिषी बुलाए गए और भी विद्वान् लोगों से सलाह-मशवरा किया गया। अंत में सबकी राय हुई कि यह बालक जिंदा नहीं बचेगा। यदि यह बच गया, तो बहुत बड़ा आदमी बनेगा, समाज को एक नया रास्ता दिखाएगा और स्वयं भगवान् का परम भक्त होगा; लेकिन यह परिवार के अन्य सदस्यों की मौत का कारण भी बन सकता है। कुछ लोगों ने यह भी सलाह दी कि कोई और कदम उठाने से पहले तीन दिन तक इंतजार किया जाए। यदि बालक जीवित रहता है तो बाद में उसके वैदिक संस्कार किए जा सकते हैं।

माता हुलसी को इन बातों से संतोष नहीं हुआ। उन्हें अपने पुत्र पर प्यार उमड़ रहा था। उन्हें यह डर था कि इस बालक को अपशकुनी मानकर ये लोग कहीं फेंक न दें। इसी सोच में वह बीमार पड़ गई।

हुलसी ने अपनी दासी मुनिया को बुलाया और अपने सारे गहने व उस बालक को सौंपकर उससे कहा, “तू चुपके से इसे अपनी सास के पास हरिपुर ले जा। वहाँ अच्छी तरह से इसका पालन-पोषण करना।” इसके बाद हुलसी इस संसार से चल बसीं।

मुनिया शिशु को लेकर रातोंरात हरिपुर पहुँची। उसकी दयालु सास चुनिया ने सारा हाल जानकर कहा, “तूने अच्छा किया, जो इसे यहाँ ले आई। हमारे घर में कलोर गाय बियाई है, उसका दूध पीकर यह जरूर जीवित रहेगा।”

चुनिया ने तुलसीदास का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से किया। वह बालक को खुश



रखने की हर तरह से कोशिश करती। किंतु यहाँ भी शिशु के दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा। चुनिया भी पाँच वर्ष बाद चल बसी। उसे साँप ने डस लिया था।

चुनिया की मौत के बाद गाँववालों ने बच्चे के पिता के पास खबर भेजी कि वह अपने पुत्र को ले जाएँ। लेकिन पिता इतने अंधविश्वासी थे कि उन्होंने अपने पुत्र को देखा तक नहीं। हुलसी और मुनिया की मृत्यु देखकर उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि उनका पुत्र अपशकुनी है।

पिता के द्वारा इस तरह त्याग दिए जाने पर तुलसीदास द्वार-द्वार भटकने लगे। दो रोटी के लिए भी वह मुँहजोर हो गए। दो साल तक उनकी यही दशा रही।

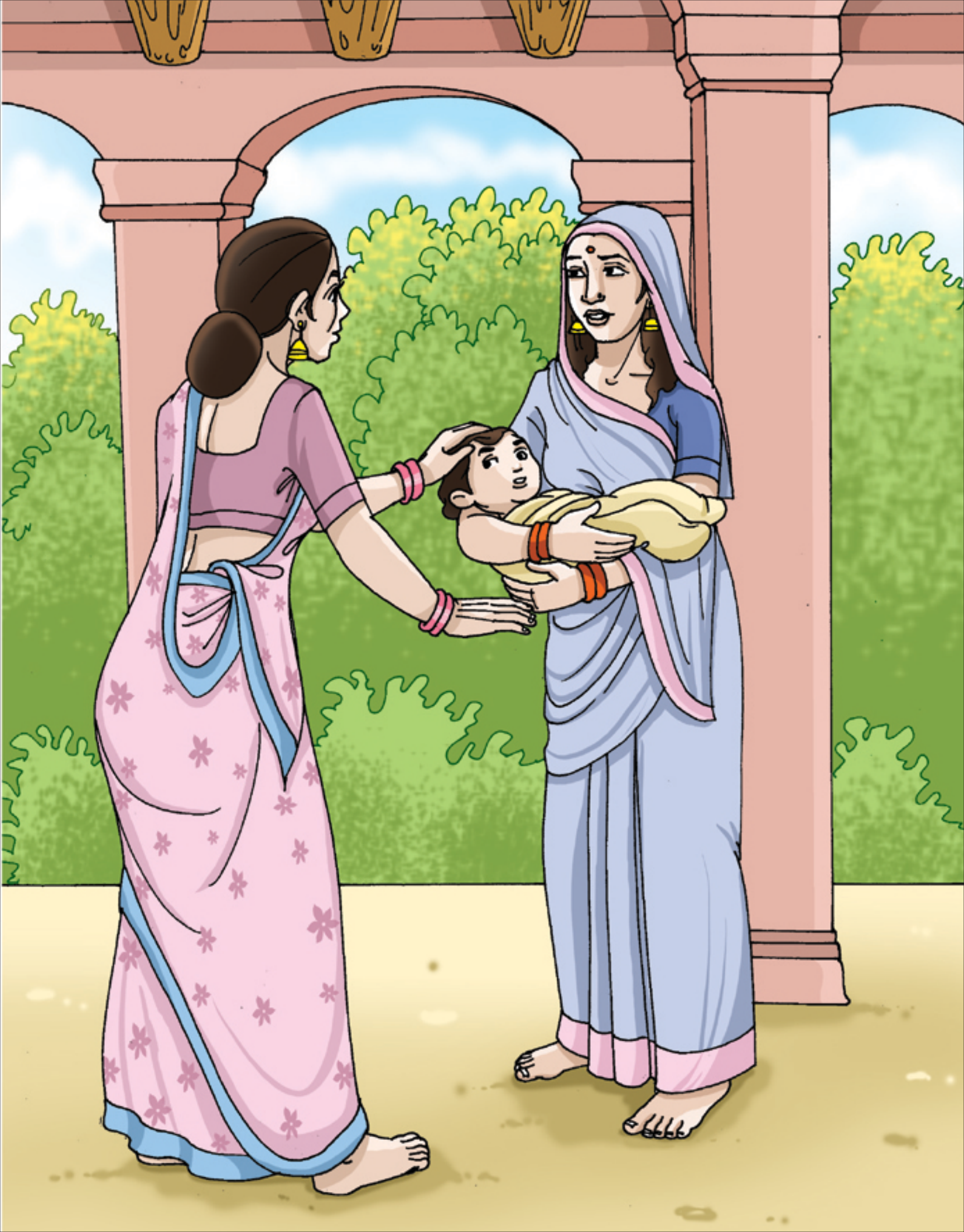
इसी भटकन के दौरान तुलसीदास की भेंट नरहरि से हुई। उनके साथ वह अयोध्या चले गए। नरहरि ने बालक के पाँच संस्कार किए। इन्हीं में नामकरण संस्कार भी था। नरहरि ने उनका नाम 'रामबोला' से बदलकर 'तुलसीदास' रख दिया।

वहीं संवत् 1561 में माघ शुक्ल पंचमी को तुलसीदास का यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया। इसी दिन स्वामी नरहरि ने तुलसी को राम-मंत्र की दीक्षा दी। फिर तुलसीदास वहीं रहकर पढ़ने-लिखने लगे।

बुद्धि के तेज तुलसी बड़े गुरुभक्त थे। वह अपने गुरु की सेवा में बड़ी लगन से लगे रहते थे। वह गुरु के मुख से एक बार जो कुछ सुनते, वह उन्हें सहज ही याद हो जाता। कुछ दिन बाद तुलसीदास गुरु के साथ सोरों पहुँचे। वहाँ गुरु ने उन्हें अयोध्या के राजा राम की कहानी सुनाई।

बालक तुलसीदास को राम की कथा पूरी तरह समझ में नहीं आई। यह बात तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में स्वयं ही स्वीकार की है।

पाँच साल तक सोरों में रहकर अयोध्या से फिर वे काशी चले गए और पंचगंगा घाट पर ठहरे। वहीं उनकी भेंट एक अन्य महात्मा शेष सनातन से हुई। उन्हीं से तुलसीदास ने वेद-पुराण आदि पढ़े। इसी से तुलसीदास के व्यक्तित्व में निखार आया और उन्हें वह शक्ति मिली, जिसने



उन्हें हिंदू जन-जागृति की प्रेरणा दी।

काशी में पंद्रह वर्ष तक रहकर तुलसीदास अपनी जन्मभूमि पर लौट आए, क्योंकि लंबी बीमारी के बाद उनके गुरु की मृत्यु हो गई थी।

शेष सनातन से तुलसीदास ने केवल किताबी ज्ञान ही नहीं बल्कि सांसारिक और सामाजिक ज्ञान भी पाया था। इसीलिए वह बचपन के सारे कड़वे अनुभव भूलकर सोरों चले आए। वहाँ उन्हें पता चला कि उनका सारा परिवार समाप्त हो चुका है। तब उन्होंने अपने पिता का श्राद्ध किया।

गाँव के लोगों ने भी तुलसीदास को अपनाने का प्रयास किया और उनसे गाँव में ही रहने का आग्रह किया। इन लोगों ने तुलसीदास के टूटे-फूटे मकान की मरम्मत की और उन्हें वहीं रहने के लिए तैयार किया। गाँववालों का आग्रह देखकर तुलसी वहीं रहने लगे और लोगों को राम कथा सुनाने लगे।

धीरे-धीरे तुलसीदास के रामकथा सुनाने की चर्चा दूर-दूर फैलने लगी। दूर-दूर से लोग उनकी कथा सुनने के लिए आने लगे।

एक दिन पड़ोसी गाँव के एक ब्राह्मण दीनबंधु पाठक कथा सुनने आए। उनके साथ उनके परिजन भी थे। उन्होंने तुलसीदास से रामकथा सुनी। वे सब तुलसीदास से बहुत प्रभावित हुए। तुलसीदास की योग्यता, गुण और सुंदरता देखकर वे उन पर रीझ गए। उनके रत्नावली नाम की एक कन्या थी।

दीनबंधु पाठक इसी पुत्री के लिए लंबे समय से वर की खोज में थे। उन्हें उसके लिए तुलसीदास उचित वर लगे। इसलिए उन्होंने तुलसीदास को अपना दामाद बनाने की कोशिशें शुरू कर दीं। चैत के महीने में एक दिन वह तुलसीदास के पास पहुँचे और अपनी इच्छा जाहिर की।

तुलसीदास घर-गृहस्थी के चक्कर में फँसना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने प्रस्ताव को



टालने की कोशिश की। लेकिन दीनबंधु पाठक एक तरह से पीछे ही पड़ गए। गाँववालों ने भी बहुत जोर दिया।

आखिर में गाँववालों के सहयोग से संवत् 1583 में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को रत्नावली और तुलसीदास का विवाह हो गया। अपनी पत्नी के साथ वह सुखपूर्वक रहने लगे।

रत्नावली सुंदर और सुशील थी, जिसे देखकर तुलसीदास ने अपने आपको उस पर न्योछावर कर दिया। वे सारी दुनियादारी छोड़कर पत्नी के प्रेम में दीवाने हो गए। यहाँ तक कि वे उसे घड़ी भर के लिए भी अपने से दूर नहीं रखना चाहते थे। इसी तरह करीब पाँच साल बीत गए।

एक दिन तुलसीदासजी किसी काम से बरखासन गाँव में गए हुए थे। तब रत्नावली अपने भाई के साथ मायके चली गई, क्योंकि उसे डर था कि अगर कहीं तुलसीदास लौट आए, तो उसे मायके नहीं जाने देंगे।

लौटकर जब तुलसीदास ने घर सूना-सूना देखा तो बहुत दुःखी हुए। दासी से यह जानकर कि रत्नावली अपने भाई के साथ मायके गई है, तो वह उसी समय अपनी ससुराल के लिए चल पड़े। रात गहरी हो चुकी थी

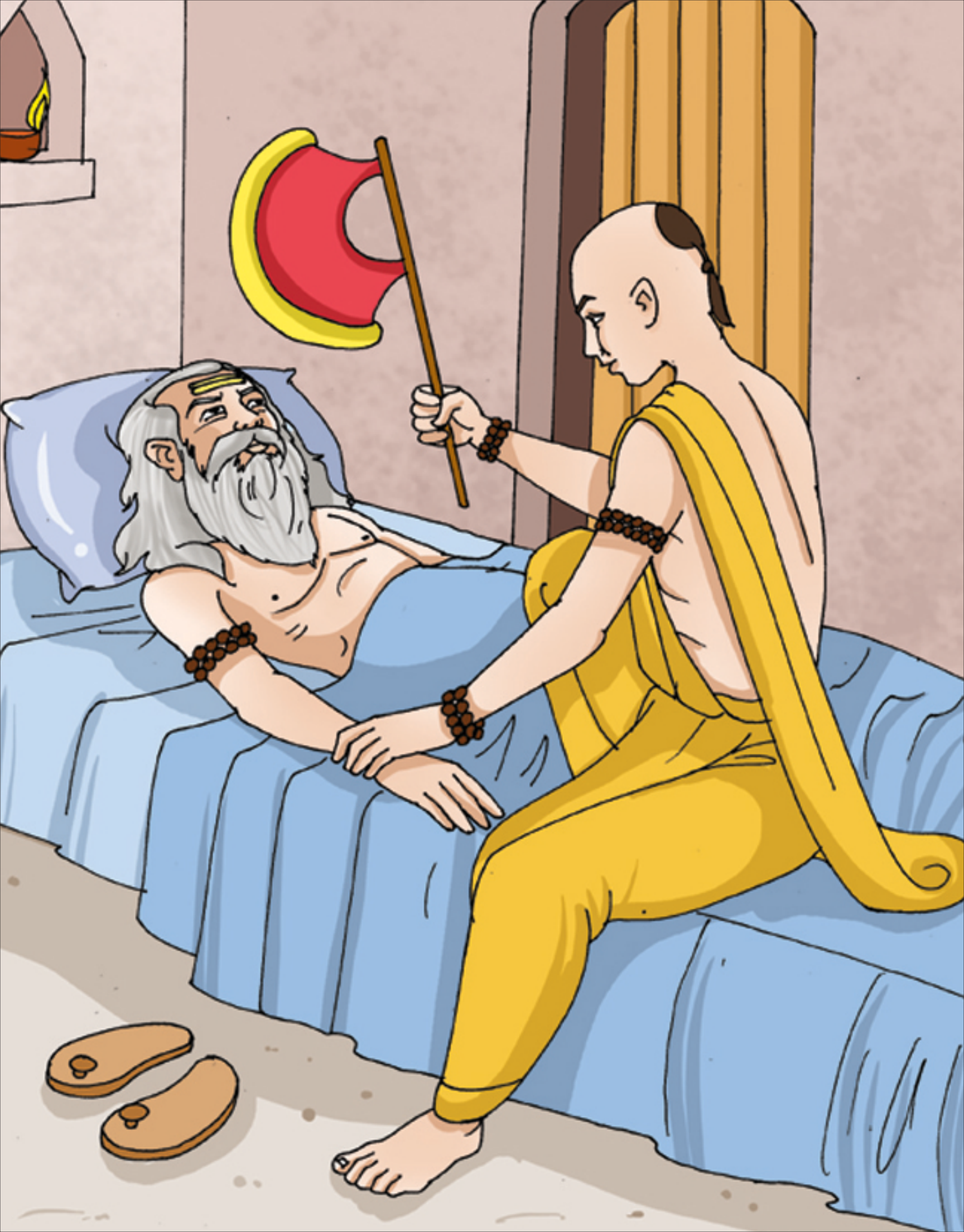
कहा जाता है कि तुलसीदास ने रात में तैरकर नदी पार की और तब रत्नावली से मिले। अपने पीछे-पीछे ही पति का आना देखकर रत्नावली को बहुत शर्म महसूस हुई। उसने तुलसीदास को बहुत धिक्कारा—

‘अस्थि-चर्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीत।

ऐसी जो श्रीराम मह होत न तव भवभीत ॥’

—अर्थात् मेरे हाड़-मांस के शरीर से आपको जितना प्रेम है, उसका आधा भी श्रीराम से होता तो संसार से डरना नहीं पड़ता।

इन शब्दों ने वह काम किया, जो दुनिया भर के उपदेश भी नहीं कर पाते। इन शब्दों ने एक



क्षण में तुलसीदास के जीवन की दिशा ही बदल दी। अब उनके हृदय में रत्नावली की जगह राम की मूर्ति विराजमान हो चुकी थी। एक क्षण भी रुके बिना वह वहाँ से चलकर सीधे प्रयाग पहुँचे। वहाँ उन्होंने साधुवेश धारण कर लिया। फिर साधुओं की जमात में शामिल होकर काशी पहुँचे।

काशी में तुलसीदास ने रामकथा कहना शुरू कर दिया। वहीं उन्हें चित्रकूट जाने की प्रेरणा मिली। तुलसी की एक ही साधना, एक ही लालसा और एक ही टेक थी—राम का दर्शन। तुलसी को राम का दर्शन हुआ या नहीं—यह विवाद का विषय हो सकता है, किंतु उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं रचनाओं में उनकी आत्माभिव्यक्ति के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्हें राम का अप्रत्यक्ष दर्शन हुआ था। इस संदर्भ में तीन प्रसंग आते हैं—

तुलसी नित्य शौचादि से निपटकर लोटे का शेष जल आम के एक वृक्ष पर चढ़ाते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। उस जल से वह अपनी प्यास बुझाता था। एक दिन उस प्रेत ने खुश होकर तुलसी से उनकी इच्छा पूछी। इस पर तुलसी ने राम-दर्शन की अपनी इच्छा बता दी।

प्रेत ने उनकी इस इच्छा की पूर्ति कराने में अपनी असमर्थता प्रकट की, फिर भी उनका मार्ग-दर्शन कर दिया, जिसके आधार पर वह उस स्थान पर गए, जहाँ रामकथा होती थी। वहाँ एक कोढ़ी प्रतिदिन सबसे पहले कथा सुनने आता था और सबसे बाद में जाता था। तुलसी ने उस वृद्ध कोढ़ी के पैर पकड़ लिये और अपनी इच्छा बताई। कोढ़ी रूपी हनुमान ने उन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी।

चित्रकूट पहुँचकर तुलसी वहाँ साधनारत हो गए। एक दिन श्याम और गौरवर्णीय दो बालक घोड़ों पर चढ़कर हिरण का पीछा करते उनके सामने से निकले। तुलसी ने इसे अपने ध्यान में व्यवधान समझकर आँखें और भी कसकर बंद कर लीं।

थोड़ी देर बाद हनुमान ने पूछा कि दर्शन हुए या नहीं ?



सारी बात सुनकर तुलसी बहुत पछताए।

दूसरा प्रसिद्ध प्रसंग है कि तुलसी चित्रकूट में रामघाट पर ध्यानमग्न थे। एक पुरुष ने चंदन की माँग की। तुलसी चंदन घिसने लगे। हनुमान ने उन्हें सचेत करने के लिए तोते की वाणी में कहा—

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।

तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर ॥

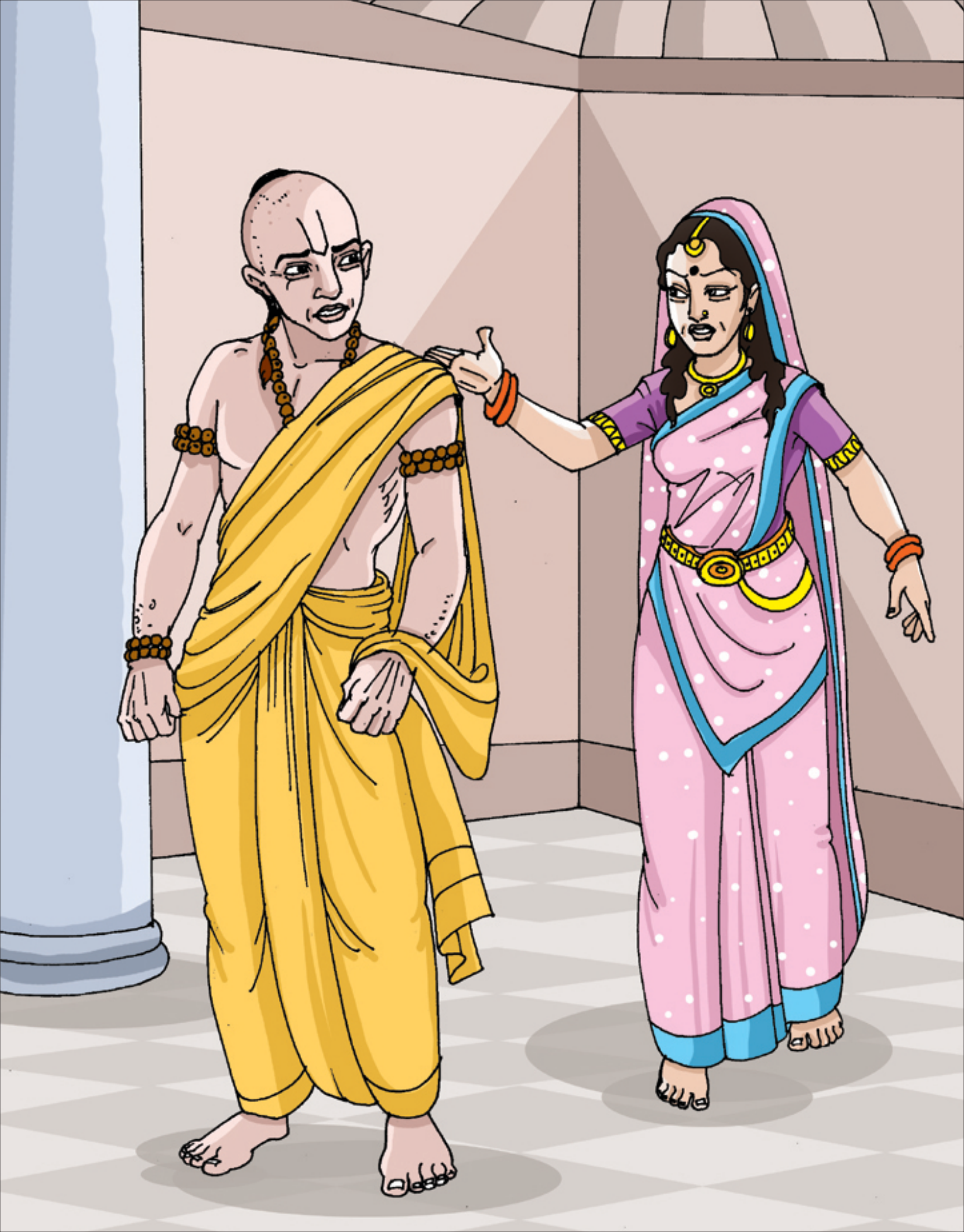
यह सुनते ही तुलसी मूर्च्छित हो गए। राम स्वयं चंदन लगाकर अंतर्धान हो गए।

तीसरे प्रसंग के अनुसार चित्रकूट में घूमते हुए तुलसी ने एक जगह रामलीला होते देखी। आगे बढ़ने पर एक ब्राह्मण मिला, जिससे उन्होंने उस रामलीला की प्रशंसा की। ब्राह्मण रूपी हनुमान ने कहा, “पागल हो गए हो, आजकल कहीं रामलीला होती है।” फिर वे अंतर्धान हो गए।

तुलसीदास संवत् 1628 में चित्रकूट से अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा था, इसलिए कुछ दिन वहाँ ठहर गए। एक दिन उन्होंने वट वृक्ष के नीचे दो ऋषियों से वही कथा सुनी, जो बहुत पहले अपने गुरु से सुन चुके थे। उन्हें उस कथा से न जाने क्या प्रेरणा मिली कि वह अयोध्या न जाकर काशी की ओर चल दिए। काशी में प्रह्लाद घाट पर उन्होंने एक ब्राह्मण के घर में अपना डेरा जमाया। वहीं उन्हें कुछ लिखने की प्रेरणा मिली।

संवत् 1631 में रामनवमी के दिन तुलसीदास ने ‘श्रीरामचरितमानस’ की रचना आरंभ की। उस दिन प्रायः वही लग्न-ग्रह आदि थे, जो राम के जन्म के समय में थे।

इस ग्रंथ के पूरा होने में दो वर्ष सात महीने 26 दिन लगे। ‘श्रीरामचरितमानस’ के छंद और उसकी कथा तुलसीदास अक्सर लोगों को सुनाया करते थे, जिससे चारों ओर उनकी चर्चा होने लगी। यह देखकर काशी के पंडित उनसे चिढ़ने लगे, उनके बारे में अपप्रचार करने लगे। वे किसी-न-किसी तरह तुलसीदास को नीचा दिखाने की कोशिश में लगे रहते थे। एक बार



उन्होंने 'रामचरितमानस' को चुराने की भी कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सके।

अंत में पंडितों ने 'रामचरितमानस' की परीक्षा के लिए उपाय सोचा। उन्होंने भगवान् विश्वनाथ के मंदिर में वेद, शास्त्र, पुराण आदि के नीचे 'रामचरितमानस' को रख दिया और मंदिर के द्वार बंद कर दिए। अगले दिन सवेरे जब मंदिर खोला गया तो तुलसीदास का 'रामचरितमानस' नीचे नहीं, सबसे ऊपर था। यह देखकर सभी पंडित हैरान रह गए।

'श्रीरामचरितमानस' ही वह ग्रंथ है, जिसने तुलसीदास को विश्व कवि बनाया। इसकी अब तक जितनी प्रतियाँ छप चुकी हैं, उतनी विश्व के शायद किसी अन्य ग्रंथ की नहीं। लोकप्रियता की दृष्टि से भी यह पहले नंबर पर आता है। शायद ही कोई हिंदू परिवार होगा, जहाँ 'श्रीरामचरितमानस' की प्रति न हो। हिंदू समाज में इसकी मान्यता किसी धर्म ग्रंथ से कम नहीं है।

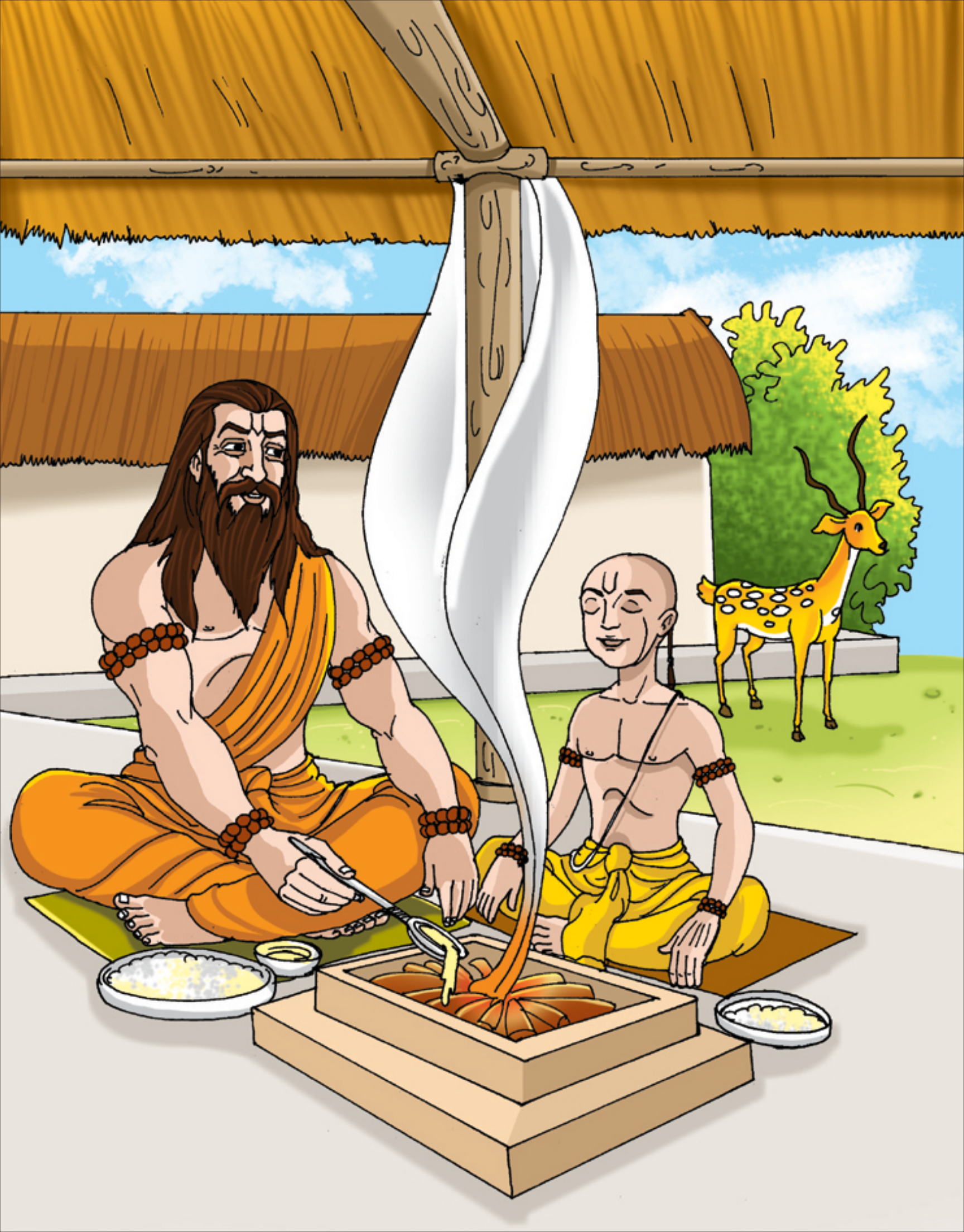
महामना मालवीयजी जब गोलमेज सम्मेलन में इंग्लैंड गए, तब उनसे पूछा गया था कि जिस प्रकार ईसाइयों और मुसलमानों में उनके धर्म का प्रतिनिधित्व क्रमशः बाइबिल और कुरान करती हैं, उसी प्रकार क्या हिंदू धर्म के वेद, पुराण, उपनिषद् आदि की खिचड़ी में से कोई एक संवांगपूर्ण ग्रंथ है? तब मालवीयजी का उत्तर था—तुलसीकृत 'श्रीरामचरितमानस'।

काव्य की दृष्टि से भी 'श्रीरामचरितमानस' की गरिमा कम नहीं है। यह विश्व के प्रमुख महाकाव्यों में सर्वोपरि माना जाता है। सामान्यतः महान् कविता करके ही कवि महान् बनता है, पर तुलसी को पाकर कविता धन्य हो गई, जैसा कि महाकवि 'हरिऔध' का कथन है—

‘कविता करके तुलसी न लसे,

कविता लसी पा तुलसी की कला।’

तुलसी के 'रामचरितमानस' से ही प्रेरणा लेकर महात्मा गांधी ने रामराज्य की कल्पना की थी। तुलसीदास का देहांत 5 जुलाई, 1623 को हुआ था। संवत् के हिसाब से यह 1680 माना जा सकता है। इस संबंध में यह छंद प्रचलित है—



संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।

श्रावण स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो शरीर ॥

‘श्रीरामचरितमानस’ के अतिरिक्त तुलसी ने निम्नलिखित ग्रंथ भी लिखे हैं—‘विनयपत्रिका’, ‘गीतावली’, ‘कवितावली’, ‘दोहावली’, ‘कृष्ण गीतावली’, ‘बरवै रामायण’ आदि।

तुलसीदास की परम ख्याति का मूल आधार उनका ग्रंथ ‘श्रीरामचरितमानस’ ही है। इसे संक्षेप में ‘मानस’ भी कहा जाता है। इसमें अयोध्या के राजा राम के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम का चरित्र विस्तार से वर्णित है। अवधी भाषा में लिखे गए इस महान् ग्रंथ के प्रमुख पात्र राम, लक्ष्मण, भरत, विभीषण, सीता आदि हिंदू संस्कृति के आदर्श चरित्र हैं।

□□□

